INDIAN STREAMS RESEARCH JOURNAL
ISSN NO : 2230-7850
IMPACT FACTOR : 5.1651 (UIF)
VOLUME - 13 | ISSUE - 9 | OCTOBER - 2023

रीवा जिले की कोल जनजातियों के सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन में गतिशीलता का अध्ययन

डॉ. नीलेश प्रताप सिंह
प्राचार्य, स्व. जाहिद खान महाविद्यालय गुढ़, रीवा (म.प्र.)

सारांश –

देश एवं प्रदेश के विभिन्न जिलों की भांति रीवा जिले की कोल जनजातियों के सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन में गतिशीलता के साथ इनके समाज में बदलाव, धार्मिक आस्था एवं विश्वास में परिवर्तन, परम्परागत लोककला, गीत, संगीत, नृत्यकला, स्थानीयकला, लोकगीत, वैवाहिक रीति–रिवाज, उत्सव, त्यौहार आदि को मनाने में द्रुत गति से बदलाव हो रहा है। जिले के अधिकांश जनजाति बाहुल्य ग्रामों में जहां साक्षरता की स्थिति नगण्य थी, साक्षर लोगों की संख्या बहुत न्यूनतम थी, ऐसे ग्रामों की जनजाति परिवार के बालक–बालिकाएं, उच्च शिक्षा, स्कूल शिक्षा में प्रवेश लेकर शहरीय क्षेत्र में अपनी सेवाएं दे रहे हैं। उच्च शिक्षित जनजाति समाज से सम्बन्धित युवा/युवतियों में आधुनिकीकरण, शहरीकरण, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया एवं दूरसंचार सुविधाओं में वृद्धि, परिवहन के साधनों के विस्तार के चलते इनके धार्मिक जीवन एवं सांस्कृतिक जीवन में गतिशीलता पायी गई है, जिसके चलते यहां के जनजातीय समाज की परम्परागत मूल संस्कृति धीरे–धीरे आधुनिकता में गतिशील हो रही है।

मुख्य शब्द – कोल जनजाति, आस्था, विश्वास, सामाजिक एवं सांस्कृतिक ।

प्रस्तावना –

सम्पूर्ण मानव समाज में धर्म की मान्यता न्यूनाधिक रूप से विद्यमान है। आधुनिक वैज्ञानिक मानव समाज, तर्क की तराजू पर धार्मिक मान्यताओं को तौल कर स्वविवेक के माध्यम से इसे नकारने का प्रयास करता रहा है। अपने चिन्तन की पराकाष्ठा पर पहुंच कर यह सोचता है कि अति मानवीय और अलौकिक शक्ति की सत्ता में विश्वास जिसका वैज्ञानिक तकनीकों से सत्यापन संभव नहीं है अंधविश्वास है। इस समूह के चिन्तकों ने धर्म को अंधविश्वास की संज्ञा दे रखी है। फलस्वरूप इस समाज के अधिकतर लोक धार्मिक क्रियाकलापों में रुचि नहीं रखते और कुछ दिन विश्वासों की वैधता नहीं मानते। अनेक मानव समाजों में विशेषकर सरल समाजों में लोगों का विश्वास है कि प्राकृतिक क्रियाओं और मानव प्रयत्नों की सरलता ऐसी सत्ताओं के नियंत्रण में है जो दैनिक अनुभूति से परे है और जिनका हस्तक्षेप घटना क्रम को बदल सकता है, ऐसी सत्ताओं के लिए देवी शब्द का प्रयोग किया जाता है।

भारतीय जनजातियों के धार्मिक जीवन की व्याख्या करते समय यहां जनजाति में धर्मों की व्याख्या प्रमुखतः जीववाद के रूप में की गई है लेकिन इनके साथ–साथ प्रकृतिवाद, गणचिन्हवाद, जादूवाद, पितृ पूंजीवाद, अनेकेश्वरवाद, मानववाद जैसी अवधारणाओं में विश्वास का प्रचलन है। जनजातियों के धर्म में विभिन्न विद्वानों के अध्ययन के आधार पर विद्यार्थी ने निष्कर्ष निकालते हुए कहा है कि समस्त भारत में जनजातियों द्वारा पालन किये जाने वाले धर्म का रूप कम या अधिक हिन्दू धर्म है। विभिन्न नृजातीय वर्णनकर्ताओं, मानव वैज्ञानिकों एवं प्राधिकारियों का धर्म के सम्बन्ध में एक विचार है। मार्टिन के अनुसार, एक आदिवासी गोड़ या

भील के धार्मिक विचार को निम्न जाति के हिन्दू के एक सदस्य के धार्मिक विचार के नाम मात्र को ही अलग किया जा सकता है। हटन ने अपनी 1931 की जनगणना की रिपोर्ट में हिन्दू धर्म एवं जनजातीय धर्म के बीच एक सीमा रेखा खींचने में कठिनाई का अनुभव किया। उसके अनुसार जनजातीय धर्म वैसी वस्तुओं को प्रस्तुत करता है जो हिन्दू धर्म के मंदिरों में नहीं बनाई गयी।

विश्लेषण –

गेट के अनुसार यह कहना बहुत कठिन है कि किस अवस्था में एक मनुष्य हिन्दू बन गया है। धुर्रे के अनुसार जनजातीय धर्म हिन्दू धर्म का एक पिछड़ा रूप है। हिन्दुओं को अपने बहुदेव मंदिर में कुछ जनजातीय देवों को समाविष्ट करने में कोई आपत्ति नहीं है। इस दृष्टि से विचार करने पर मजूमदार ने पाया कि आज जनजातीय धर्म पार्श्ववर्ती धर्म का प्रतिनिधित्व करता है जो विज्ञान एवं कृत्रिम विज्ञान के बीच एवं धर्म तथा जादू के बीच एक तरह अवस्थित है कि वह इनमें से किसी का नहीं है। गोड़ का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए वे कहते हैं कि उनके धार्मिक जीवन को निम्न स्तर वाले हिन्दू जाति के लोगों से मुश्किल से अलग किया जा सकता है। जनजातीय भारत के अधिकतर भागों में जनजातीय लोगों ने लोकप्रिय हिन्दू धर्म के प्राचीन विश्वासों एवं व्यवहार को अपना लिया यद्यपि यह स्थिति उनके द्वारा अपने देवताओं के लिए व्यवहृत विभिन्न नामों एवं भोजनों, जल या व्यापार के सम्बन्धों में बरती गई उदासीनता से छुप जाती है। इस सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि जनजाति हिन्दू धर्म का सहधर्मी है। इसका आधार एवं बालरत्नम् उनके वर्तमान धर्म को हिन्दू धर्म का एक अत्यन्त सरल रूप समझते हैं। इस सन्दर्भ में निर्मल कुमार बोस का विचार सबसे बाद का है। यद्यपि वे भारत में धर्म के जनजातीय रूप पर निष्कर्ष देना नहीं चाहते, फिर भी उनका विचार है कि हिन्दू धर्म के निर्माण में पूर्व काल में भारत की जनजातियों ने उदारतापूर्वक योगदान दिया।

जीववादी विश्वास तथा आचार –

जीववाद –

भारतीय जनजातीय धर्म के प्रमुख आधारों में एक जीववाद है, इसे रिजले से लेकर मजूमदार तक सभी विद्वानों ने स्वीकारा है। अतः जनजातियों के धार्मिक जीवन, पर्व, लोककला एवं त्यौहारों को मनाने में बड़ी आस्था और विश्वास की स्थिति ज्ञात हुई है।

जीववाद से सम्बन्धित विश्वास की व्यापकता निम्नांकित उदाहरणों से स्पष्ट हो जायेगी, सम्पूर्ण वातावरण जहां जनजातियां निवास करती हैं, आत्माओं से भरा रहता है। मध्य भारत में संथाल एवं उराव अपने मृतक की आत्मा की उपस्थिति में विश्वास करते हैं जिसकी पूजा मझिऐथान में करते हैं। जैसा कि मजूमदार का कहना है कि मिर्जापुर के कौरवाओं में फसलों, वर्षा और जानवरों का संचालन करने वाली जीवात्माएं हैं और उनमें असाध्य ऐसी जीवात्माएं हैं जो कोरवा के पड़ोसी जनजातीय पुजारी प्रमुख पुरूष एवं जनजाति के सामान्य कार्यों के प्रति धारणा है जो मनुष्य के लक्ष्य को प्रभावित करता है। विद्यार्थी के अनुसार संथाल परगना के सौरिया पहाड़िया में अलौकिक प्राणी गोसाई के प्रति दृढ़ विश्वास पाया जाता है। सौरिया पहाड़िया के एक व्यक्ति के अनुसार बीमारी, अकाल, पानी की कमी, जमीन की कम उर्वरा शक्ति, फसल की कम उपज, अधिक मृत्यु आदि ये सब तभी होती है जब गोसाई या दुष्ट जीवों की यथोचित पूजा नहीं होती एवं समय पर बलि नहीं दी जाती। छत्तीसगढ़ के कमरों एवं भुइयों में जीवात्मा के प्रति विश्वास की उपस्थिति पायी गयी है। इस विश्वास के अनुसार जब मनुष्य स्वप्न देखता है तो उसके शरीर का अन्त जीव इधर–उधर भटकता रहता है। जब किसी पुरूष की मृत्यु हो जाती है तो उसका शरीर माटी हो जाता है एवं कब्र में पड़ा रहता है। उसका अंतःजीव बाहर निकल कर भगवान में मिल जाता है।

गारो में ऐसा विश्वास है कि मनुष्य में अवस्थित जीव मृत्यु के उपरान्त पुनः अवतरण के पूर्व दूसरे क्षेत्र में कुछ दिनों के लिए समय व्यतीत करता है। जब कोई बीमार पड़ जाता है तब जयंतिया अपने पूर्वज की प्रार्थना करता है जहां मृतकों की आत्माएं विराजती हैं। इसी प्रकार की अनुसूचित जनजातियां मध्यप्रदेश के विभिन्न जिलों एवं बघेलखण्ड पठार स्थित रीवा जिले की कोल जनजातियों के धार्मिक जीवन और रीति–रिवाज, परम्परा पर आस्था, विश्वास ज्ञात हुआ है। जिले की कोल, माझी, गोड़, आदि जनजाति इसके उदाहरण हैं। पश्चिम भारत का भील मृतक के उत्तर जीवन में विश्वास करता है। आत्मा का अस्तित्व जीव के रूप में रहता

है, फिर उन लागों में असंख्य प्रकृति जीवात्मा, पहाड़ों की जीवात्मा, झरनों, जंगलों की जीवात्मा एवं हानिकारक एवं दण्डात्मक जीवात्मा का दल रहता है। करलिस जीवात्माओं से बहुत भय खाते हैं। जब कोई बीमार पड़ जाता है या कोई दुःखद घटना घट जाती है तब वे इसका कारण किसी देवता का क्रोध, किसी जीवात्मा का काम या डायन का दुष्कृत्य मानते हैं। वीर उनका कुल देवता है। ठाकुर के भी वीर हैं जो उसकी पैतृक जीवात्मा है।

गण चिन्हवादी विश्वास तथा आचार –

इसे ही टोटेमवाद भी कहा जाता है। किसी भौतिक वस्तु, पशु, पक्षी, पौधा या प्रकृति की अन्य कोई चीज जिसके साथ एक गोत्र के सदस्य अपना एक अलौकिक या गढ़ सम्बन्ध मानते हैं और जिसके प्रति विशेष श्रद्धा, भक्ति और आदर का भाव रखते हैं टोटेम कहलाता है। इस टोटेम से सम्बन्धित समस्त धारणाओं, विश्वासों और संगठन को टोटेमवाद कहते हैं। बघेलखण्ड पठार अन्तर्गत रीवा जिले की जनजाति समुदाय का विशाल सामाजिक संगठन है, यह समुदाय अनेक गोत्र और उपजन जातियों के समूहों से मिल कर बना है। मैरेट ने इसे परिभाषित करते हुए कहा है कि किसी गोत्र के सम्बन्ध में टोटेमवाद उस पद्धति को कहते हैं जिसके अनुसार किसी जनजाति का कोई उपभाग किसी विशेष जानवर या वनस्पति से अपना विशिष्ट सम्बन्ध समझता है, उसके नाम का प्रयोग करता है और यह दावा करता है कि उसके साथ उसका एक रहस्यमय सम्बन्ध है।

भारतीय जनजातियों के लिए टोटेमवाद एक सामान्य विशेषता है, उनमें से अधिकतर पशुओं के अतिरिक्त पौधों के साथ अपने रहस्यात्मक सम्बन्ध में विश्वास करते हैं। हो के लिए खिजनी उनका गोत्र है एवं प्रत्येक गोत्र के टोटेम से सर्वाधिक एक वस्तु है जो उनके लिए पवित्र है। मुण्डाओं एवं उरावों में भी टोटेमवादी गोत्र है। संयाज एवं खड़ियाओं में भी गोत्र हैं जो या तो पौधों या पशुओं या भौतिक वस्तुओं के नाम से जाने जाते हैं। सभी जनजातियों में ऐसा विश्वास है कि टोटेम या गणचिन्हवाद सम्बन्धी पौधों या पशुओं ने उनके गोत्र के पूर्वजों की रक्षा और सहायता की है या उनका कुछ उपयोग हुआ है। वे लोग अपनी गणचिन्हवाद वस्तु को श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं और उसे याद नहीं करते। वे लोग न तो उसका फल खाते हैं और न फूल। यदि गणचिन्ह सम्बन्धित वस्तु बीमारी की अवस्था में पायी जाती है तो वे लोग उसकी सेवा करते हैं और उसका युक्त छोड़ देते हैं। मरे हुए गणचिन्ह सम्बन्धित रिश्ते बर्हिविवाह का बंधन कायम करते हैं।

शमनवाद –

शमनवाद के अन्तर्गत वे धार्मिक अनुष्ठान आते हैं जिनमें सिद्धान्तः यह माना जाता है कि व्यक्ति के बाह्य जगत की आत्माएं उस व्यक्ति में प्रविष्टि हो जाती हैं, फलतः वह व्यक्ति उसी समय कार्य सम्पादन करता है जब उसमें प्रविष्ट आत्मा उसे उत्साहित करती है। देश एवं प्रदेश की जनजातियों की भांति रीवा जिले के अनुसूचित जनजाति बाहुल्य विकासखण्ड जवा में कोल जनजाति में धार्मिक अनुष्ठान के प्रति आस्था एवं गहरा विश्वास, निष्ठा, लगन, अध्ययन के दौरान ज्ञात पायी गई है।

इस तरह के व्यक्तियों को शमन या ओझा कहा जाता है। जनजातियों के लिए यह चिकित्सा होती है। शमन को अति मानवीय शक्तियां प्राप्त होती है जिसकी सहायता से वह चिकित्सा कार्य करता है। विश्व की प्रायः सभी जनजातियों में शमन या ओझा पर विश्वास किया जाता है। किसी दुर्भाग्यग्रस्तता अथवा बीमारी का इलाज से अगर फायदा नहीं होता तो उनकी आत्म को दुरात्मा द्वारा प्रभावित माना जाता है तब इसे जानने के लिए लोग ओझा या शमन के पास आते हैं क्योंकि ओझा ही साधारण क्षमताओं के बाहर सम्पर्क करने में सक्षम होता है। ओझा अपनी सामान्य स्थिति में रहकर दूसरों का इलाज करता है। ओझा प्रेत्माओं से बातचीत कर उपचार करता है। ओझा अपने आपको अन्य व्यक्तियों से अलग रखने की कोशिश नहीं करता। ओझा यह बताता है कि कौन सा पूर्वज नाराज है तथा उसे खुश करने के लिए बलि या मृत व्यक्तियों को तर्पण देते हैं। यदि देवता को बलि का पशु दिखा दिया जाता है तो बाद में उसकी बलि दी जाती है।

मध्यप्रदेश की अधिकतम जनजातियां अपने ओझा को बैगा कहती हैं। यह बैगा कभी सरसो और कभी किसी विशेष पेड़ की टहनी लेकर झाड़फूंक का काम करते हैं। कभी–कभी इस पद्धति में विशिष्ट आयोजन किया जाता है। कंवार जनजाति में यह मान्यता है कि हर गांव में एक टोहनी रहती है जो लोगों को डायन कर्म

द्वारा क्षति पहुंचाती है। बैगा इन टोहनियों से गांव की रक्षा करता है। जनजाति जीवन में हर पल खतरे की आशंका बनी रहती है। चाहे वह प्राकृतिक विपदाओं से हो या अन्य कबीलों के आक्रमण का हो। इन गर्दिशों के समय में बैगा दुष्ट आत्माओं के प्रभाव को नष्ट कर सकता है, ऐसी उनकी मान्यता है।

पुराकथाएं (मिथिक) –

मिथिक धर्म का एक महत्वपूर्ण अंग है। साधारण अर्थ ये किसी भी ऐसे कथन को मिथिक कहा जाता है, जिन्हें वैज्ञानिक कसौटी पर प्रायः खत्म नहीं माना जाता है। इसमें चमत्कारों के युग की बातें हैं, मैलिनेस्की ने मिथक को उस कहानी का प्रथम रूप माना है जो अनुष्ठान में दुहराई जाती है या सामाजिक सम्बन्धों में किसी अधिकार का औचित्य सिद्ध करती है।

वर्तमान काल में किसी कार्य की पुनरावृत्ति के लिए मिथक स्वर्णिम अतीत से एक प्रभावशाली दृष्टांत प्रस्तुत करता है। राजाओं, जादूगरों, अनुष्ठानाधिकारियों के प्रथम पूर्वज के प्रादुर्भाव की कहानी अनेक वंशजों की राजनीतिक या धार्मिक सत्ता का उत्तराधिकारी सिद्ध करने में सहयोगी होते हैं। टोटेमी वस्तु के प्रति श्रद्धा भाव के प्रदर्शन हेतु मिथक घोषणा पत्र की तरह व्यवहृत होता है। बहुत सी जनजातियों के मिथक विश्वव्यापी प्रश्नों यथा लोग करते क्यों हैं? मृत्यु कैसे आयी? स्वर्ग से पृथ्वी कैसे अलग हुई? का उत्तर देते हैं। जनजातियों के बीच ब्रह्माण्ड के सम्बन्ध में अनेक मिथक प्रचलित है। मिथक की सर्वाधिक प्रचलित भूमिका अनुष्ठान या पूजा करने में निहित है, यह क्यों किया जाता है और इससे क्या प्राप्ति होती है? इत्यादि। मिथक ये किसी ऐतिहासिक पुरूष के रोमांचकारी एवं वीरतापूर्वक कहानी हो सकती है जो जनजाति समूह को अनेक गोत्रों या कुल देवताओं से सम्बन्धित करा सकती है। मिथक प्राकृतिक घटनाओं में मनुष्य या पशुओं के प्रयोजन को लक्षित करता है अथवा उन घटनाओं की व्याख्या किसी दैवी शक्ति या अति मानवीय शक्ति के कार्यकलाप के रूप में कर सकता है।

भारत की जनजातियों में मिथिक एवं गाथाओं की प्रचुरता है तथा इनके द्वारा धार्मिक अवसरों की व्याख्या की जाती है। प्रत्येक ग्राम स्थान, गोत्र आदि के पीछे कुछ न कुछ मिथिकीय आधार होते हैं, उदाहरणार्थ – शूद्रों का विश्वास है कि टुंग मनुष्य एवं पृथ्वी का रचयिता है जिसका स्थान अस्पष्ट है। एक समय उसने सभी जीवित प्राणियों का विनाश कर डाला था, केवल एक पुरूष एवं एक स्त्री को छोड़ दिया गया था। विभिन्न जनजातियों के मिथिकों के अनुसार, नये संसार की रचना विभिन्न प्रकार से हुई। मुण्डाओं के मिथिक से ज्ञात होता है कि सिंग बैगा ने जल पर विचरण किया एवं प्रथम जीवन के रूप में एक कछुआ, एक कारकों, एक लेढ़ाह की उत्पत्ति हुई। अन्त में हूसा के एक पक्षी में आकर अण्डा दिया जिससे एक लड़का और एक लड़की की उत्पत्ति हुई। ये सब हीरो–हीन मनुष्य के पुत्र के पूर्वज थे। भारतीय जनजातियों में ऐसी अनेक कहानियां प्रचलित हैं। मिथिकों के सन्दर्भ में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि मिथिक जनजातीय परिस्थिति एवं अवस्था का व्यवहार करती हैं तथा जनजाति मस्तिष्क एवं विश्वास को संतुष्ट करता है।

सिरोच्छेदन –

विभिन्न विशिष्ट जनजातियों में सिरोच्छेदन प्रचलित रहा है। इसे प्रयोग में लाने वाले जनजातियों में यह मान्यता रही है कि सिरोच्छेदित शक्ति की आत्मा तथा शक्तियों के शिरोच्छेदन को प्राप्त हो जाती है। ग्रीक इतिहासकार हेरोडेटस ने पांचवी सदी ईसा पूर्व में एसिया के लोगों में शिरोच्छेदन की परम्परा के प्रचलन का वर्णन किया है। मलेनेशिया में वृद्ध महिलाओं के सिरों को खम्भे के द्वारा टांगकर अच्छी फसल प्राप्त करने के लिए तिलस्मा की तरह व्यवहार होता था। बहुत सी जनजातियों में दुश्मनों का शिरोच्छेदन विवाह के लिए आवश्यक माना जाता था।

भारत में उत्तर पूर्व प्रदेश में निवास करने वाली नागा तथा अन्य जनजातियों में भी ब्रिटानी साम्राज्य काल तक शिरोच्छेदन एक परम्परा रही है। ब्रिटिश साम्राज्य के प्रयत्नों और वर्तमान भारत सरकार के प्रयत्नों के फलस्वरूप यद्यपि इसे रोक दिया गया है, फिर भी वर्ष में एक दो शिरोच्छेदन की घटनाएं हो ही जाती है। नागा जनजातियों में आक्रमणकारी समूह झरनों के किनारे घात लगाकर बैठा रहता है और ज्यों ही प्रतिद्वन्द्वी जनजातियों की स्त्री या बच्चे उधर से गुजरते हैं, उन पर आक्रमण कर सिर काट लेता है। अगर इन जनजातियों का एक गांव दूसरे गांव के लोगों पर आक्रमण करता है तब वे यह काम रात में करते हैं। स्त्री का

सिर, पुरूष के सिर की अपेक्षा अधिक मूल्यवान समझा जाता है। कारण यह कि स्त्रियों को पुरूष द्वारा रक्षित समझा जाता है। अतः उनका शिरोच्छेदन काफी साहसिक कार्य है। नागा लोगों में शिरोच्छेदन न केवल वीरता का प्रतीक है वरन उनकी मान्यता है कि इससे गांव में फसलों की वृद्धि के साथ–साथ अधिक संतानोत्पत्ति तथा प्रबुद्ध शिकार प्राप्त होगा। इन लोगों में शिरोच्छेदन विवाह के लिए आवश्यक शर्तों में एक था। इसके पीछे उनकी मान्यता है कि जब तक एक नागा शिरोच्छेदन नहीं करता, उसमें प्रजनन शक्ति की वृद्धि हेतु अतिरिक्त आत्मा नहीं आती।

अभिचार (डायन कर्म) –

ईवांस प्रिचार्ड ने सर्वप्रथम डायन कर्म का विस्तृत अध्ययन किया। उसे अफ्रीका भर में प्रचलित इस विश्वास का पता चला। उनका मानना है कि डायन कर्म एक वास्तविकता है जो कुछ लोगों के शरीर में निवास करती है और उसकी इच्छा के बिना भी कार्य करती है। उन्होंने अफ्रीका के कांगों की सीमा पर अजाण्डे जनजाति के अध्ययन के बाद बताया कि अजाण्डे लोगों का विश्वास है कि जब आदमी को पता चलता है कि उसमें डायन कर्म की शक्ति है तो वह उन व्यक्तियों को कष्ट पहुंचाने की कोशिश करता है जिन्हें वह नापसन्द करता है। इस शक्ति का पता तब चलता है जब कोई दैवज्ञ या ओझा किसी आदमी के रोग का कारण बताता है। डायन कर्म में विश्वास के मूल कारण अनपेक्षित दुर्भाग्य की व्याख्या की आवश्यकता है, खास कर ऐसे समाज में जहां दुर्भाग्य को दैव योग नहीं सोचा जाता। जिन जनजातियों में डायन में विश्वास है उनमें इनके रूप और व्यवहार के विषय में अनेक धारणाएं प्रचलित हैं। डायन कर्म का समय राशिकाल है क्योंकि इसी समय गुण दुराचार संभव है। रात में विचरणे वाले प्राणी उससे सम्बन्धित माने जाते हैं। डायन ऐसे काम करते दिखाए जाते हैं जो कदाचरण के विरूद्ध है जैसे नंगे नाच करना या घर के सामने मल मूत्र त्याग करना इत्यादि, जो पुरूष या स्त्री डायन बनता है उसका मनहूस, असामाजिक शिकायती रूप प्रत्यक्ष होता है। इस विश्वास में वे सब लक्षण आते हैं। डायन कर्म की दुष्टता मूर्तरूप कहा जाता है। अतः समाज से डायनों को हटाने का प्रयत्न किया जाता है। भारतीय जनजातियों मे डायन कर्म प्रायः स्त्रियों द्वारा किया माना जाता है। हो जनजाति में डायन कर्म करने वाली स्त्री को समाज द्वारा बहिस्कृत किया जाता है। छोटा नागपुर के उरांव जनजाति में डायन कर्म किया है। इसमें पुरूष और स्त्री दोनों शामिल हैं। पुरूष जहां अपने को घोषित कर देता है, वहीं स्त्री इसे गुप्त रखती है। स्त्री डायन दुष्ट आत्माओं के प्रभाव से खेतों की फसल, जीवित मनुष्य को छति पहुंचा देती है। वह जानवरों को बीमार बना देती है। उराव जनजाति के लोग जादू–टोनों की परम्परा में विश्वास करते आ रहे हैं और उनकी मान्यता है कि मनुष्य के लिए जो हानिकारक कार्य है वे डायनों द्वारा किये गये हैं। उनकी मान्यता है कि बीमारी, अप्राकृतिक मृत्यु, जानवरों एवं फसलों का विनाश, चेचक, पानी में डूबना, पेड़ों से गिरना डायन द्वारा ही किया जाता है।

जादू –

दुबे के अनुसार जादू उस शक्ति विशेष का नाम है जिसमें अति मानवीय जगत पर नियंत्रण प्राप्त किया जा सके और उसकी क्रियाओं को अपनी इच्छानुसार भले या बुरे, शुभ अशुभ उपयोग में लाया जा सके।

उपरोक्त परिभाषा में दुबे ने जादू की तीन विशेषताओं का उल्लेख किया है। प्रथम तो यह है कि जादू का सम्बन्ध अतिमानवीय जगत से होता है, दूसरा यह है कि जादू एक शक्ति है। जादूगर इस शक्ति को अपने अधिकार में अति मानवीय जगत पर नियंत्रण पाने के उद्देश्य से रखता है, तीसरी बात यह है कि इस शक्ति का प्रयोग जादूगर अपनी इच्छानुसार कर सकता है और इसलिए इस शक्ति का प्रयाग भले या बुरे, शुभ या अशुभ काम के लिए किया जा सकता है, दूसरे शब्दों में जादूगर अपनी उस शक्ति की सहायता से दूसरे को हानि या लाभ पहुंचा सकता है।

फ्रेगर के विचार उक्त विचार से कुछ भिन्न हैं। जादू की परिभाषा करते हुए उन्होंने लिखा है कि जादू इस आधार पर एक आभासी विज्ञान है कि कार्य कारण सम्बन्ध के एक अटल नियम के अनुसार यह प्रकृति पर दबाब डालता है। इस प्रकार फ्रेगर के अनुसार जादू प्रकृति पर नियंत्रण पाने का एक साधन है। यह साधन कुछ की एक नियमितता पायी जाती है। इस दृष्टि से जादू प्रकृति को नियंत्रण में करने के लिए कुछ प्रविधियों और पद्धतियों का एक समूह है। फ्रेजर के अनुसार जादू में विश्वास करने वाले व्यक्ति अर्थात् जादूगर की दो

विशेषताएं होती हैं। पहली तो यह कि उसमें यह विश्वास होता है कि उसकी जादू की शक्ति प्राकृतिक शक्तियों के कार्य कारण सम्बन्धों के अटल नियमों को समझता है और इसीलिए वह उन पर प्रभुत्व करने का दावा करता है। वह प्राकृतिक शक्तियों को स्वामी नहीं बल्कि दास समझता है जिसे वह इच्छानुसार अपने काम में लगा सकता है। इसलिए वह प्राकृतिक शक्ति को श्रद्धा और सम्मान की दृष्टि से नहीं देखता है। जादूगर की दूसरी विशेषता उसकी कार्यविधि से सम्बन्धित है। धर्म पर विश्वास करने वाले व्यक्ति की भांति जादूगर प्राकृतिक शक्ति की विनती या आराधना, पूजा या प्रार्थना करके, उसे प्रसन्न करके, उस प्रसन्नता से लाभ उठाने का प्रयत्न नहीं करता बल्कि वह उस शक्ति के भेद को जानकर, उसे दबाकर, अपने अधिकार में करके, उस शक्ति को अपने उद्देश्यों की पूर्ति में प्रयोग करता है।

मैनिलोवास्की ने जादू के सम्बन्ध में लिखा है कि जादू विशुद्ध व्यावहारिक क्रियाओं का योग है जिन्हें कि उद्देश्यों की पूर्ति के साधन के रूप में प्रयोग किया जाता है। उन्होंने यह भी लिखा है कि जब इच्छित परिणामों को अन्य किसी भौतिक प्रविधि या आय से प्राप्त नहीं किया जा सकता है तब जादू के साधन से उन परिणामों को प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाता है। इस प्रकार मैलिनोवस्की ने जादू के व्यावहारिक पक्ष पर अधिक बल दिया है। जादू की यह व्यावहारिकता या उपयोगिता आदिकालीन समाज में और अधिक थी क्योंकि आदिवासी लोगों के जीवन में अनेक ऐसी परिस्थितियां और समस्याएं उठ खड़ी होती थी जिनका कि हल वे अपनी सीमित बुद्धि और कौशल के आधार पर नहीं कर पाते। उनकी इस कमी को धर्म और जादू पूरा करते हैं। उनके जीवन में अनेक खतरे होते हैं और ऐसी अनेक दुर्घटनाएं होती है जिनका अंदाजा पहले से नहीं लगाया जा सकता। ऐसी परिस्थितियों में जादू लोगों का बहुत बड़ा सहारा है। इसके अतिरिक्त जादू चमत्कारों में विश्वास दिलाकर अनेक कठिन परिस्थितियों का सामना करने का साहस लोगों को प्रदान करता है। जादू का चमत्कार इसके शत्रु का विनाश करने या उसे हानि पहुंचाने में भी मदद करता है। इसीलिए मैलिनोवस्की के अनुसार जादू वह शक्ति है जो कुछ व्यावहारिक हितों की पूर्ति के साधन के रूप में प्रयोग में लाई जाती है।

फ्रेजर के अनुसार जादू के दो भेद है– (1) अनुकरणात्मक जादू (2) संक्रामक जादू।

अनुकरणात्मक जादू इस नियम पर आधारित है कि जब एक प्रकार की क्रिया की जाती है तो परिणाम भी उसी प्रकार का होता है अर्थात् समान कारण से समान कार्य होते हैं, उदाहरणार्थ अण्ट्रिया में यह विश्वास किया जाता है कि यदि प्रसवतियों को किसी वृक्ष का प्रथम फल खाने को दिया जाए तो उस वृक्ष पर अगले वर्ष काफी फल आयेंगे।

इसके विपरीत संक्रामक जादू का अर्थ है कि जो वस्तु एक बार किसी के सम्पर्क में आ जाती है, हमेशा सम्पर्क में रहती है। उदाहरणार्थ यदि किसी व्यक्ति का बाल काट दिया जाय तो वह सम्पर्क से अलग जहर हो जाता है परन्तु संक्रामक जादू के सिद्धान्त के अनुसार उनका सम्पर्क तत्व से समाप्त नहीं होता क्योंकि उस कटे हुए बाल पर जादुई यंत्रों द्वारा नुकसान पहुंचाए जाने पर उस आदमी को कष्ट पहुंचेगा।

मैलिनो वाली ने दो प्रकार के जादू की चर्चा की है (1) सफेद जादू (2) काला जादू

रीवा जिले के कोल अनुसूचित जनजातियों में भी क्षेत्रीय अध्ययन से ज्ञातव्य है कि यहां के जनजाति में जादू, टोना, झाड़फूंक, ओझा, देवार आदि पर आस्था और विश्वास की मान्यता कूट–कूट कर है। सफेद जादू सामाजिक कल्याण के लिए होता है जबकि काला जादू का उद्देश्य दूसरों को हानि पहुंचाना है। उन्होंने टोना और भूतप्रेत की सिद्धि को भी काला जादू के अन्तर्गत सम्मिलित किया है। श्यामाचरण दुबे ने जादुई क्रिया के उद्देश्य के आधार पर जादू को तीन भागों में बांटा है –

(1) सर्वधक जादू – इसमें वर्षा, नाव चालन, वाणिज्य लाभ, आखेट, उर्वरता, मत्स्य संकलन और विवाह के लिए जादू आते हैं।
(2) संरक्षक जादू – इसमें सम्पत्ति की रक्षा, ऋण की वापसी, दुर्भाग्य से बचाव, रोग का उपचार, यात्रा की सुरक्षा के लिए तथा विनाशक जादू के प्रभाव को रोकने के लिए किये जाने वाले जादू आते हैं।
(3) विनाशक जादू – तूफान के नियंत्रण के लिए, सम्पत्ति विनाश के लिए, बीमारी बढ़ाने के लिए, किसी व्यक्ति को मारने के लिए किये गये जादू विनाशक जादू के अन्तर्गत आते हैं।

भारतीय जनजातीय आयाम में जादू धर्म का एक अभिन्न अंग है। ऐसा कहा जाता है कि जादू धर्म के बराबर महत्व रखता है। अशुभ घटना, अपर्याप्त तकनीकी साधन और अनिश्चितता एवं खतरे से पूर्ण वातावरण उन लोगों को जादुई प्रथाओं में विश्वास कराता है। यह किसी न किसी रूप में भारत की जनजातियों की

सामान्य विशेषता है। मजूमदार ने मुण्डाओं द्वारा अच्छी वर्षा के लिए पत्थर को लुढ़का कर या हो द्वारा धुंआ उत्पन्न करने का उदाहरण प्रस्तुत किया है। मुण्डा जनजाति के लोग पहाड़ की चोटी पर जाकर सभी आकार के पत्थरों को नीचे की ओर फेकते हैं जिनसे पत्थर की गड़गड़ाहट, बिजली की गड़गड़ाहट से मिले, उनका विश्वास है कि ऐसा करने से वर्षा होती है।

निष्कर्ष –

निष्कर्षतः अध्ययन क्षेत्र रीवा जिले के जनजातियों के सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन में गतिशीलता की स्थिति, उनके धार्मिक जीवन, रीति–रिवाज, रहन–सहन, कला, संस्कृति, उत्सव, त्यौहार आदि का व्यक्तिगत अध्ययन पद्धति से लिये गये साक्षात्कार से यह तथ्य उभरकर प्रकाश में आया है कि यहां की मूल जनजातियों में कोल सर्वाधिक आबादी वाली जनजाति है जो अपनी परम्परागत सामाजिक व्यवस्था, पुरानी संस्कृति, श्रम एवं रोजगार के साधन, प्रदूषित एवं नमीयुक्त आवास, पुराने रीति–रिवाज, उत्सव, त्यौहार, धार्मिक मान्यताओं का प्रभाव दृष्टिगोचर है।

संदर्भ –

1. उपाध्याय, विजय शंकर एवं शर्मा, विजय प्रकाश (2002), भारत की जनजातीय संस्कृति, सप्तम संस्करण, म. प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, पृष्ठ 36–39
2. उपाध्याय, विजय शंकर एवं शर्मा, विजय प्रकाश (2002), भारत की जनजातीय संस्कृति, सप्तम संस्करण, म. प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, पृष्ठ 40–41
3. हुसैन, माजिद (2003), मानव भूगोल प्रमुख जनजातियों का धार्मिक एवं सांस्कृतिक जीवन, रावत पब्लिकेशन, जयपुर एवं नई दिल्ली, पुनर्मुद्रित संस्करण, पृष्ठ 407
4. हसनैन नदीम (2007), जनजातीय भारत, रवि मजूमदार जवाहर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, अष्टम संस्करण, पुनर्मुद्रित, पृष्ठ 73–74